जैन धर्म का स्वरूप

□ आचार्य श्री विजयानंद सूरि

(आचार्य श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वरजी महाराज की सबसे छोटी पुस्तक 'जैन धर्म का स्वरूप' है। सामान्य लोग जो जैन धर्म का संक्षिप्त और जल्दी ही परिचय प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। एक प्रकार से यह जैन धर्म परिचय लेख है। उसे यहां उन्हीं की भाषा में जस का तस प्रकाशित कर रहे हैं। इससे उनकी भाषा और प्रस्तुति का प्राथमिक परिचय मिलता है।)

यह संसार द्रव्यार्थिक नय के मत से अनादि अनंत सदा शाश्वता है, और पर्यायार्थिक नय के मत से समय समय में उत्पत्ति और विनाशवान है, इस संसार में अनादि से दो-दो प्रकार का काल प्रवर्त्तता है, एक अवसर्पिणी, और दूसरा उत्सर्पिणी, जिसमें दिन प्रतिदिन आयु, बल, अवगाहना प्रमुख सर्व वस्तु घटती जाती है तिस काल का नाम अवसर्पिणी कहते हैं। और जिसमें सर्व अच्छी वस्तु की वृद्धि होती जाती है, तिसका नाम उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

इन पूर्वोक्त दोनों कालों में कालके करे छै छै विभाग है, जिसको अरे कहते हैं। अवसर्पिणी का प्रथम सुखम सुखम १, सुखम २, सुखम दुखम ३, दुखम सुखम ४, दुखम ५, दुखम दुखम ६ है। उत्सर्पिणी में छहों विभाग उलटे जानने। जब अवसर्पिणी काल पूरा होता है, तब उत्सर्पिणी काल शुरू होता है, इसी तरह अनादि अनंत काल की प्रवृत्ति है ॥

प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के तीसरे चौथे अरे में चौबीस अर्हन् तीर्थंकर अर्थात् सच्चेधर्म के कथन करनेवाले उत्पन्न होते हैं। जो जीव धर्म के बीस कृत्यकर्त्ता है, सो भवांतरों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर होता है, वह बीस कृत्य यह हैं ।

अरिहंत १, सिद्ध २, प्रवचन अर्थात् श्रुतवान् संघ ३, गुरु धर्मोपदेशक ४, स्थविर ५, बहुश्रुत ६ और अनशनादि विचित्र तप करने वाला तपस्वी अथवा सामान्य साधु ७, इन सातों की वात्सल्यता करे, अर्थात् इनके साथ अनुराग करे, यथावस्थित गुण कीर्त्तन करे, यथायोग्य पूजा भक्ति करे, तो तीर्थंकर पद उपार्जन करे ७ । पूर्वोक्त सातों पदों का वार-वार ज्ञानोपयोग करे, तो तीर्थंकर पद उपार्जन करे ८, दर्शन सम्यक्त्व ९, ज्ञानादि विषय विनय १०, इन दोनों में अतिचार न लगाये, अवश्यमेव करने योग्य संयम व्यापार में अतिचार न लगावे ११, मूलगुण उत्तरगुण में अतिचार न लगावे १२, क्षण लवादि काल में संवेग भावना और ध्यान की सेवना करे १३, तप करे, और साधुओं को उचित दान देवे १४, दस प्रकार की वैयावृत्य करे १५, गुरु आदिकों को कार्य करण द्वारा चित्त में समाधि उपजावे १६, अपूर्व ज्ञान ग्रहण करे १७, श्रुत भक्तियुक्त प्रवचन की प्रभावना करे १८, श्रुतका बहुमान करे १९ यथाशक्ति देशना, तीर्थयात्रादि करके प्रवचन की प्रभावना करे २० । इनमें से एक, दो, तीन, चार, उत्कृष्ट बीस पदके सेवने से जीव तीर्थंकर पद उपार्जन करता है । यह कथन श्रीज्ञाता सूत्रमें है ॥

जो जीव तीर्थंकर होता है, सो निर्वाण अर्थात् मोक्षको प्राप्त हो जाता है, पुनः संसार में नहीं आता है, पूर्वोक्त धर्म कृत्यों के करने से जितने तीर्थंकर पूर्वे हो गये हैं, और जितने आगे को होवेंगे, वोह सर्व एक सरीखा ही ज्ञान कथन करते हैं ॥

तीर्थंकर दो प्रकार का धर्म कथन करते हैं, श्रुतधर्म १, और चारित्र धर्म २, श्रुत धर्म में द्वादशांग गणिपिडग, और चारित्रधर्म में साधु का, और गृहस्थ का धर्म ॥

श्रुतधर्म में नवतत्व, षट्द्रव्य, षट्काय, चार गतियों का वर्णन है, तिनमें प्रथम नवतत्व का किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं ।

जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, निर्जरा ७, बंध ८ और मोक्ष ९, यह नव तत्व के नाम हैं ॥

जैन मत में चैतन्य लक्षण जीवका है, सो जीव ज्ञानादि धर्मों से कथंचित्त भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है । तथा विवृत्तिमान् (विवृत्ति नाम परिणाम का है, तिसके होने से जीव परिणामी हैं; इस वास्ते नरक १, तिर्यंच २, मनुष्य ३, देव ४, इन चारों गतियों में, तथा एकेंद्रिय १ द्वींद्रिय २, त्रींदिय ३, चतुरिंद्रिय ४, पंचेंद्रिय ५ इन पांचों जातियों में विविध प्रकार की उत्पत्ति रूप परिणामों का जो अनुभव करने वाला, अर्थात् भोगने वाला तथा शुभाशुभ कर्मका कर्त्ता, और अपने करे शुभाशुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म का भोक्ता, और साधन द्वारा सर्व कर्मका नाश करके मोक्षपद को प्राप्त होने वाला, द्रव्यार्थेसदाअनादि, अनंत, अविनाशी नित्य, और पर्यायार्थे अनेक अवस्थाओं की उत्पत्ति और विनाशवाला, ऐसे पूर्वोक्त विशेषण संयुक्त होवे तिसको जैनमत में जीव कहते हैं(१) ॥

इन पूर्वोक्त सर्व लक्षणों से जो विपरीत होवे, अर्थात् जिसमें चैतन्यादि लक्षण न होवें, सो अजीब :—धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, पुद्गल, (परमाणु से लेके जो २ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्दवाला है, सो पुद्गल) ४, और काल ५ यह पांच द्रव्य अजीब है(२) ॥

जिसके उदय से जीव को सुख होवे, सो पुण्य(२)

जिसके उदय से जीव को दुःख होवे, सो पाप(४) ॥

मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४, और योग ५, इन पांचों का नाम आश्रव तत्व है ५

पूर्वोक्त आश्रव का जो निरोध करना, सो संवर तत्व है(६) ॥

बंधे हुए कर्मो का अर्थात् स्पृष्ट, बद्ध स्पृष्ट, निद्धत्त और निकाचित रूप करके जो कर्म का बंध करा है, तिन कर्मो को तप, चारित्र, ध्यान, जपादि करके जीव से पृथक् करना, तिसका नाम निर्जरा तत्व है (७)

जीव और कर्म, इन दोनों का लोलीय भाव परस्पर क्षीर नीरकी तरह जो मिलाप होना, सो बंध तत्व(८) ॥

स्थूल शरीर औदारिक, और सूक्ष्म शरीर तेजस्, कार्मण इन सर्व का आत्मा से जो साधन द्वारा अत्यंत वियोग अर्थात् फिर जीव के साथ कदापि बंध न होवे, तिसको मोक्ष तत्व कहते हैं(९) ॥

षट्द्रव्य के नाम और तिनका स्वरूप लिखते हैं।

धर्मास्तिकाय, जीव और पुद्गल के चलने में सहायकारी, जैसे मछली के चलने में जल(१) ॥

अधर्मास्तिकाय, जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायकारी, जैसे रस्ते में पंथी को वृक्ष(२)।

आकाशास्तिकाय, सर्व पदार्थो के रहने वास्ते अवकाश देता है, जैसे बेराको कूंडा(३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवास्तिकाय, चैतन्यादि लक्षणों वाला, प्रथमजीव तत्व में लिख आये हैं ॥(४)

पुद्गलास्तिकाय, कारण रूप परमाणुओं से ले के सर्व कार्यरूपवर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्द, छाया, आतप, उद्योत, पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे, नरक, स्वर्गादि जो स्थान हैं, तथा पृथिवीकायिक का शरीर, एवं जल, अग्नि, पवन, वनस्पति के शरीर, यह सर्व पूर्वोक्त पुद्गलास्तिकायके काय हैं। और जितना कथन जैनमत के योनिप्राभृतादि शास्त्रों में, तथा जो जो दृश्यमान वस्तुओं में उलट पलट हो रहा है और जो विद्यमान सायंस विद्या से विचित्र प्रकार की वस्तु उत्पन्न होती है, यह सर्व पुद्गलास्तिकाय की शक्ति से हो रहा है(५)।

जो नवे से पुराना आदि जगत् व्यवस्था का निमित्त है, सो कालद्रव्य है ॥

जैनमत में छे (६) वस्तुओं को जीव सहित मानते हैं, जिनको षट्काय कहते हैं, तिनके नाम और स्वरूप लिखते हैं। पृथिवी काय १, अप्काय, २, तैजस्काय ३, वायुकाय ४, वनस्पतिकाय ५, और त्रसकाय ६ । इनमें जो पृथिवी है, सो सर्व एकेंद्रिय अर्थात् स्पर्शनेंद्रियवाले असंख्य जीवों के शरीरों का पिंड है पर इस पृथिवी के जिस भाग ऊपर अग्नि, क्षार, ताप, शीतादिका मिलाप होता है, तिस भाग के जीव मृत्यु हो जाते है, और तिन जीवों के शरीर रह जाते हैं, तिसको अचित्त पृथिवी कहते हैं। इस पृथिवी में समय समय असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, और असंख्य जीव मृत्यु होते हैं, पर यह पृथिवी प्रवाह से इसी तरह अनादि अनंत काल तक रहेगी। चंद्र, सूर्य, तारे आदि सर्व इसी तरह जान लेने (१) पानी ही जिन जीवों का शरीर है, सो अपकायिक है।

जगत् में जितना पानी है, सर्व असंख्य जीवों के शरीर का पिंड है, अग्नि आदि शस्त्रों के लगने से अचित्त अप्काय कही जाती है, अन्यथा सर्व जल सजीव है(२) ॥

तैजस्काय सो अग्नि। अग्नि असंख्य जीवों के शरीर का पिंड है, जब अग्नि के जीव मृत्यु हो जाते हैं, तब कोयले भस्मादि जीवों के शरीर का पिंड रह जाता है(३) ॥

पवन भी असंख्य जीवों के शरीर का पिंड है, पवन के जीवों का शरीर नैत्र से देखने में नहीं आता है। और पंखे आदि से जो पवन होती है, तिस पवन में जीव नहीं होते हैं। क्योंकि सो असली पवन नहीं है किंतु पंखे आदि की प्रेरणा से पुद्गलों में पवन सदृश परिणाम होने से पवन मालूम होती है (४)।

वनस्पतिकाय, जो कंदमूल, काई, प्रमुख वनस्पति है, तिनमें अनंत जीव हैं, और जो वृक्षादि वनस्पति है, तिनमें असंख्य जीव हैं। जिस वनस्पति को अग्नि आदि शस्त्र का संबंध होवे, और जो वनस्पति सूक जावे, सो वनस्पति के जीवों का शरीर है। किंतु वनस्पति के जीव तिनमें नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५)।

यह पूर्वोक्त पृथिवी, अप्, तैजस्, वायु, वनस्पति पांचों काय में केवल एक स्पर्शेंद्रिय है, इस वास्ते इन पांचों काय के जीव एकेंद्रिय कहे जाते हैं, इनका विस्तार से स्वरूप प्रज्ञापना सूत्र में है, और इन पांचों में जीव की सिद्धि के प्रमाण का स्वरूप आचारांग सूत्र की निर्युक्ति में है, और इन पांचों के जीव समय समय में परस्पर मरके उत्पन्न होते हैं।

त्रसकाय, तिसमें द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, इन चारों जाति के जीवों को त्रसकाय कहते हैं॥

अन्यमत वाले वनस्पति को पृथिवी के अंतर्भूत मान के पृथिवी, जल, अग्नि, पवन इनको चार तत्व वा चार भूत मानते हैं, तैसे जैनमत में नहीं मानते हैं। जैनमत में तो इनको जीव और जीवों ने शरीरपणे अनंत परमाणु ग्रहण करके कर्मों के निमित्त से असंख्य शरीरों का जो पिंड रचा है, सोई पृथिवी आदि पांच है, ऐसा मानते हैं। और यह पांचो प्रवाहसे अनादि से पहले २ जीव मृत्यु होते जाते हैं, और तिन ही शरीरों में वा अन्य शरीरों में नवीन जीव इनही पांचों में से मरके (पर्याय बदल के) उत्पन्न होते हैं, और तिनजीवों के विचित्र प्रकार के कर्मोदय से विचित्र प्रकार के रंग रूप हैं, और इनके शरीर में जो परमाणुओं का समूह है, तिनमें अनंत तरह की शक्तियां हैं, और तिनके परस्पर मिलने से अनेक प्रकार के कार्य जगत् में उत्पन्न होते हैं, और इनके परस्पर मिलने में काल १ स्वभाव २, नियति ३, कर्म ४, उद्यम परस्पर की प्रेरणा ५, इन पांचों शक्तियों से पदार्थों को मिलने से विचित्र प्रकार की रचना अनादि प्रवाह से हुई है, और होवेगी। यह पांच शक्तियां जड़ चैतन्य पदार्थों के अंतर्भूत ही है, पृथक् नहीं। इस वास्ते इस जगत् के नियमों का नियंता, और कर्त्ता ईश्वर को नहीं मानते हैं, किंतु जड़ चैतन्य पदार्थों की शक्तियां ही कर्त्ता और नियंता है॥

जैनमत में चारगति मानते हैं। नरकगति १, तिर्यंच गति २, मुनुष्य गति ३, और देव गति ४, इनमें से नरक उसको कहते है, जिसमें जीवों को निःकेवल दुःख ही है, किंचिन्मात्र भी सुख नहीं है, इन नरकवासियों के रहने का स्थान सात पृथिवियों में मानते हैं, तिनके नाम रत्न प्रभा १, शर्करप्रभा २, वालुप्रभा ३, पंकप्रभा ४, धूमप्रभा ५, तमःप्रभा ६, तमः तमः प्रभा ७। यह सातों पृथिवियां अधोलोक में मानते है, और इन पृथिवियों का परस्पर अंतरादि सर्व स्वरूप प्रज्ञापनादि शास्त्रों में है, इन सातों पृथिवियों के रहनेवाले जीवों को नरकगतियें कहते हैं, तिनके दुखों का स्वरूप प्रज्ञापना, प्रश्न व्याकरण सूत्रकृतांगादि सूत्रों में है(१)।

पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, और गाय, भैंस, घोड़ादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेंद्रिय, यह सर्व जीव तिर्यंचगति में गिने जाते हैं(२) ॥

मनुष्यगति में सर्व मनुष्य गिने जाते हैं(३) देवगति में चार जाति के देवता गिने जाते हैं, तिनके नाम—भुवनपति १, व्यंतर २, ज्योतिषी ३, और वैमानिक ४। तिनमें से भुवनपति, और व्यंतर, यह दोनों जाति के देवता इसही पृथिवी में रहते हैं(२) ॥

ज्योतिषी देवता, सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे जो आकाश मंडल में हमें देखने में आते हैं, तिनमें सूर्य और चंद्र तिर्यग् लोक में असंख्य है, और मंगल आदि अट्ठासी ८८ जाति के ग्रह, अभिजितादि अट्ठाईस २८ जाति के नक्षत्र, और तारे यह सर्व तिर्यग्लोक में असंख्य है, यह सर्व ज्योतिषी देवता रूप तीसरी जाति का देवलोक है(३) ॥

चौथा भेद वैमानिक देवताओं का है। ज्योतिषी देवताओं के ऊपर असंख्य कोड़ा कोड़ी योजन के अंतरे सौधर्म १, ईशान २, यह दो देवलोक बराबर बराबर हैं। तिनके ऊपर असंख्य योजन के अंतरे सनत्कुमार ३, माहेंद्र ४, यह दो देवलोक हैं। इसी तरह असंख्य २ योजन के अंतरे अगले ऊपरले स्वर्ग हैं, तिनके नाम—ब्रह्म ५, लंतक ६, शुक्र ७, सहस्रार ८, आनत ९, प्राणत १०, अरूण ११, अच्युत १२, इनके आगे नव ग्रैवेयक देवलोक तिनके नाम—भद्र १, सुभद्र २, सुजात ३, सोमनस ४, प्रियदर्शन ५, सुदर्शन ६, अमोघ ७, सुप्रबुद्ध ८ यशोधर ९, इनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान बराबर हैं, तिनके नाम—पूर्व दिशा में विजय १, दक्षिण में वैजयंत २, पश्चिम में जयत ३, और उत्तर में अपराजित ४, ये चारों दिशा में हैं, और इनके मध्य में सर्वार्थसिद्ध ५, यह छब्बीस २६ स्वर्ग वैमानिक देवताओं के हैं। इन सर्व देवताओं के भुवन, नगर, विमानादिकों का स्वरूप, लंबाई, चौड़ाई और यह सर्व आकाश में किस तरह खड़े हैं, और तिन में रहने वाले देवताओं को कैसे सुख है, तथा तिनकी आयु, अवगाहना, इत्यादिकों का विस्तार सहित वर्णन प्रज्ञापनासूत्र, संग्रहणी सूत्रादिकों में है ॥

सर्वार्थसिद्ध विमान से ऊपर तेरह १३ योजन के अंतरे लोकांत है। तिस लोकांत आकाश को जैन मत में सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। तिस आकाश क्षेत्र में मुक्तात्मा रहते हैं। तिनके ऊपर अलोक है, अलोक उसको कहते हैं, जो निःकेवल आकाशमात्र है। तिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, और आकाश ये पांचों द्रव्य नहीं हैं। इसलोक के चारों तल ऊपर नीचे जो निःकेवल आकाश है, तिसको अलोक कहते हैं, सो अलोक अनंत है। इसे जड़ चैतन्य की गति न हुई, न होवेगी। चारों जाति के देवताओं में जैसे जैसे शुभकर्म जो करते हैं, तिनकी प्रेरणा से तैसी तैसी देवगति उत्पन्न होते हैं, यह दोनों लोकालोक किसी ने भी रचे नहीं हैं, किंतु अनादि अनंत सिद्ध हैं। इति देवगति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनमत में आठ कर्म मानते हैं, तिनके मान ज्ञानावर्णीय १, दर्शनावर्णीय २, वेदनीय, मोहनीय ४, आयुः ५, नाम ६ गोत्र ७, अंतराय ८। इन सर्व कर्मों के मध्यम १४८ एक सौ अडतालीस भेद हैं। इन कर्मों का विस्तार सहित वर्णन षट् कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्रज्ञापनादि सूत्रों में है ॥

कर्म उसको कहते हैं, जिनके प्रभाव से सर्व संसारी जीव देहधारण करके अनेक प्रकार की सुख दुःखादि अवस्था भोग रहे हैं। और यह कर्म स्वरूप में जड़ है। जीवों के शुभाशुभ काम करने से अनंतानंत परमाणुओं के अनंत स्कंध आत्मा के साथ संबंध वाले होते हैं, तिसको कर्म कहते हैं। जैसे तैल चोपड़े हुए शरीर के ऊपर सूक्ष्म रज जम जाती है, ऐसे ही पूर्व कृत कर्मोदय से जीव में क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादि चिकणत्वता से जड़का संबंध आत्मा को होता है। जब वह कर्म उदय होते हैं, तब तिन के सबब से जीव एक सौ बाईस तरह के दुःख सुख भोगते हैं। इत्यादि अनेक तरह का कर्म स्वरूप जैनमत में मानते हैं ॥

अथ जैनमत का सामान्य से मंत-व्यामंतव्य लिखते हैं।

१-अरिहंत और सिद्ध इन दोनों पदों को परमेश्वर पद मानते हैं ॥

२-एक ईश्वर है, ऐसे एकान्त नहीं मानते हैं ॥

३-ईश्वर को सर्व व्यापक नहीं मानते हैं, परंतु ईश्वर पद की ज्ञायक शक्ति को सर्व व्यापक मानते हैं ॥

४-ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते हैं ॥

५-संसार को प्रवाह से अनादि मानते हैं ॥

६-ईश्वर को जगत् का नियंता नहीं मानते हैं ॥

७-जगत् का नियंता जड़ चैतन्य की काल, स्वभाव, नियति, कर्म, और पुरुषार्थ रूप अनादि शक्तियों को मानते हैं ॥

८-ईश्वर जीवों के शुभाशुभ कर्म फल का दाता नहीं, पर ईश्वर पद को साक्षी ज्ञातृ रूप से मानते हैं ॥

९-ईश्वर जो चाहे, सो कर सक्ता है, ऐसा नहीं मानते हैं ॥

१०-ईश्वर को जीवन मोक्ष अवस्था में अर्थात् त्रयोदशम गुण स्थान में धर्मोपदेश का दाता मानते हैं परंतु विदेह मोक्ष हुए पीछे नहीं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११-ईश्वर का जगत् में अवतार होना नहीं मानते हैं ॥

१२-मोक्ष पद को अनादि अनंत मानते हैं ॥

१३-मोक्षपद में अनंत आत्मा मानते हैं ॥

१४-मोक्षपद आत्मित्वजाति करके एक ही मानते हैं ॥

१५-मोक्षात्मा सर्व परस्पर जहां एकात्मा है, तहां अनंत आत्मा हैं। दीपकों के प्रकाश की तरह स्थानांतर की जरूरत नहीं ॥

१६-जगद्वासी जीव और मोक्षात्मा दोनों स्वरूप में एक समान हैं, परं बंधाबंध से भेद है ॥

१७-जगद्वासी आत्मा शरीर मात्र व्यापक है, सर्व व्यापक नहीं ॥

१८-जगद्वासी आत्मा अपने करे शुभाशुभ कर्मों से अनेक तरह की योनियों में उत्पन्न होता है ॥

१९-जगद्वासी आत्मा अपने २ निमित्तों से कर्म फल भोक्ता है, अन्य कोई फलदाता नहीं ॥

२०-जगत् में जड़ चैतन्य द्रव्य अनादि हैं; किसी के रचे हुए नहीं हैं ॥

२१-जगत् में जीव अनंतानंत हैं इससे मोक्ष जाने से जीव रहित कदापि संसार नहीं होता है ॥

२२-जीव के स्वरूप, और ईश्वर के स्वरूप में एक सदृशता है ॥

२३-कर्मो के संबंध से जीव समल है, और कर्म रहित होने से ईश्वर निर्मल है ॥

२४-अठारह दूषणों से रहित होवे, तिसको देव, अर्थात् परमेश्वर मानते हैं ॥

२५-पंचमहाव्रतधारी, सम्यक्त्व ज्ञान सहित शुद्ध प्ररूपक को गुरु मानते हैं ॥

२६-पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित देवने जो मुक्ति का मार्ग कहा है, तिसको धर्म मानते हैं ॥

२७-द्रव्य छै ६ मानते हैं ॥

२८-तत्व ९ मानते हैं ॥

२९-कायाषट् ६ मानते हैं ॥

३०-गति चार ४ मानते हैं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१-जीव, और अजीव दो राशी, अर्थात् इस जगत् में चैतन्य, और जड़, यह दो ही वस्तु हैं ॥

पूर्वोक्त जो सामान्य प्रकार से लेख लिखा है, इसका सम्यक् स्वरूप ४ चार निक्षेप, ७ सप्तनय, २ दो प्रमाण स्याद्वादसप्तभंगी की रीति से जाने, तिसको श्रुतधर्म कहते हैं, इस श्रुतधर्म के स्वरूप कथन करने वास्ते ही द्वादशांग गणिपिड़ग श्रुतज्ञान है। इस पूर्वोक्त कथन को जो सम्यक् प्रकारे श्रद्धे, तिसका नाम सम्यग् दर्शन है। यह दोनों ही (द्वादशांगगणिपिडग श्रुतज्ञान, और सम्यग्दर्शन) श्रुतधर्म में गिने जाते हैं। यह संक्षेप से श्रुत धर्म का स्वरूप कथन किया। तथा अरिहंत परमेश्वर की जो त्रिकाल विधि से पूजा करनी, तीर्थ की प्रभावना करनी, वात्सल्यता करनी, इत्यादिक सर्व सम्यक्त्व की करणी है ॥

अथ दूसरा चारित्रधर्म, सो तीर्थंकरों ने दो प्रकार का कथन किया है। एकसाधु धर्म १, और दूसरा गृहस्थ धर्म २। तिनमें साधुधर्म सत्रह १७ भेदे संयम-५ पांचमहाव्रत (प्राणातिपातविरमण १, मृषावादविरमण २, अदत्तादान विरमण ३, मैथुन विरमण ४, और परिग्रह विरमण ५) क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, इनका त्याग। पांच इंद्रियों के विषय से निवृत्ति ५। मनदंड १, वचन दंड २, कायादंड ३, इन तीनों का त्याग। एक सर्व सत्रह १७ भेद संयम के पाले तथा क्षमा १, मार्दव २, आर्जय ३, निर्लोभता ४, लाघव अकिंचनता ५, सत्य ६, संयम ७, तप ८, शौच ९, और ब्रह्मचर्य १० यह दस प्रकार का यति धर्म पाले। ४२ बैतालीश दूषण रहित भिक्षा लेवे। रात्रि को चारों आहार (अन्न, पाणी, खादम स्वादम) न करे। वासी न रखे। बिना कारण एक ग्राम नगर में सदा न रहे। किसी मकान का वा चेला, चेली, श्रावक, श्राविका का ममत्व न रखे। किसी प्रकार की बिना कारण असवारी न करे। पक्षी की तरह अपने धर्मोपकरण लेके नंगे पगों से ग्राम नगरों में विहार करके जगज्जन चारों वर्णों को धर्मोपदेश करे। धर्म सुनने वालों के पास से किसी प्रकार की चढ़त न लेवे। भिक्षा भी थोड़ी थोड़ी बहुत घरों से लेवे। भिक्षा ऐसी लेवे, जिससे भिक्षा देने वाले को किसी प्रकार की पीड़ा न होवे। चातुर्मास में लकड़ी के पाट ऊपर, और शेष आठ मास में भूमि के ऊपर शयन करे। जो कोई शत्रुता करे, तिसका भी कल्याण चाहे। इत्यादि अनेक शुभ गुणों करके संयुक्त जो पुरुष होवे, तिस पुरुष को जैनमत में साधु मानते हैं। और तिसका जो कर्त्तव्य होवे तिसको साधु का धर्म कहते हैं। यह साधु धर्म का संक्षेप से कथन है।

अब दूसरा गृहस्थ का धर्म संक्षेप से कथन करते हैं ॥

गृहस्थ धर्म दो प्रकार का है। अविरतिसम्यग् दृष्टि १, और देशविरति २ ॥ अविरति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग् दृष्टि उसको कहते हैं; जो कोई प्रकार की भी विरति (त्याग) नहीं कर सकता है । निःकेवल त्रिकाल अरिहंत की पूजा करता है, और आठ प्रकार के दर्शनाचार को निरतिचार पालता है । वह आचार यह हैं । जिनवचन में शंका न करे १ जिनमत के सिवाय अन्य किसी मत की वांछा न करे २, जिनमत की करणी के फल में शंका न करे ३, किसी पाखंडी आदि के मंत्र, यंत्र, तंत्रादिक का चमत्कार, ऋद्धिसत्कार, सन्मान, पूजा भक्ति, इत्यादि देख के मूढ़, दृष्टि अर्थात् जैनधर्मोपरि मन में अनादर लाना, सो नहीं लावे ४, गुणवंत के गुणों की महिमा, स्तुति करके वृद्धि करे ५, जो कोई धर्म से गिरता होवे, तिस को हरेक उपाय से जिनधर्म में स्थिर करे ६, जो अपना सधर्मी होवे, चाहे किसी जाति का होवे, तिसकी अपने प्रियकुटुम्ब से भी अधिक अशन, वसन, पुष्प, तंबोल, धन, दानादि करके भक्ति करे, तिनका नाम वात्सल्य कहते है । सो सधर्मी की वात्सल्यता करे ७, तीर्थयात्रा, रथ यात्रादि महोत्सव करे, जिससे अरिहंत सदाचार आदरे, धर्मोपदेश करे, जिससे अरिहंत भाषित धर्म की प्रभावना हो । (जिसके करने से जगत् में धर्म की दीपना, वृद्धि होवे, उसका नाम प्रभावना है) ८ । यह आठों आचार यथाशक्ति पाले । यह अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक का धर्म संक्षेप से जानना ॥

देशविरति श्रावक का धर्म तीन प्रकार का है । जो कर्तव्य अविरति सम्यग् दृष्टि का ऊपर लिख आये हैं, सो कर्त्तव्य तीनों प्रकार के देश विरतियों का भी है, और जो विशेष है, सो लिखते हैं । जघन्य १, मध्यम २, और उत्कृष्ट ३ ॥

तिन में जघन्य श्रावक के लक्षण लिखते हैं । जो जान के स्थल जीव की हिंसा न करे, मध (शराब) मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करे नमस्कार महामंत्र को धारणा करे, और नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, सो जघन्य श्रावक जानना १, जो धर्म योग्य गुणों करी व्याप्त होवे, षट्कर्म, और षडावश्यक सदा करे और बारह व्रत धारण करे, ऐसे सदाचार वाले गृहस्थ को मध्यम श्रावक जानना २, जो सचित्त आहार को वरजे, दिन में एक बार भोजन करे, और ब्रह्मचर्य को पाले, सो गृहस्थ उत्कृष्ट श्रावक जानना ॥३ ॥

मध्यम श्रावक का स्वरूप किंचित् विस्तार से लिखते हैं ।

प्रथम धर्म की योग्यता के एक बीस (२१) गुण होने चाहियें, सो लिखते हैं । गंभीर होवे १ । रूपवान्, संपूर्णांगोपांग सुंदर पंचेंद्रिय पूर्ण होवे २ । प्रकृति सौम्य, स्वभाव से सौम्याकार वाला होवे ३ । लोकप्रिय, यह लोक परलोक विरुद्ध काम न करे और दान शीलादि गुणों करके संयुक्त होवे ४ । अक्रूर, अक्लिष्ट अध्यवसाय मन का मलीन न होवे ५ । भीरु, यह लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परलोक के अपाय दुःखों से डरता हुआ निःशंक अधर्म में न प्रवर्त्ते ६ । अशठ, निश्चद्माचारनिष्ठ किसी के साथ ठगी न करे ७ । सदाक्षिण्य, अपना काम छोड़के भी पर काम कर देवे ८ । लज्जालु, अकार्य करने की बात सुन के लज्जावान् होता है; और अपना अंगीकारकरा हुआ धर्म सदनुष्ठान कदापि नहीं त्याग सकता है ९ । दयालु, दयावान्, दुःखी जंतुओं की रक्षा करने का अभिलाषुक होता है, क्योंकि धर्म का मूल ही दया है १० । मध्यस्थ, राग द्वेष विमुक्तबुद्धि पक्षपात रहित ११, सौम्यदृष्टि, किसी को भी उद्वेग करने वाला न होवे १२ । गुणरागी, गुणों का पक्षपात करे १३, सत्कथा, सपक्ष युक्त सत्कथा सदाचार धारणे से शोभनिक प्रवृत्ति के कथन करने वाले जिस के सहायक कुटुम्बीजन होवें, अर्थात् धर्म करते को परिवार के लोक निषेध न करें १४ । सुदीर्घ दर्शी, अच्छी तरह विचार के परिणाम में जिससे अच्छा काम होवे, सो कार्य करे १५ । विशेषज्ञ, सार असार वस्तु के स्वरूप को जाने १६ । वृद्धानुग, परिणत मतिज्ञान वृद्ध सदाचारी पुरुषों के अनुसार चले १७ । विनीत, गुरुजन का गौरव करे १८ । कृतज्ञ, थोड़ा सा भी उपकार इस लोक परलोक संबंधी किसी पुरुष ने करा होवे, तो तिसके उपकार को भूले नहीं, अर्थात् कृतघ्न न होवे १९ । परहितार्थकारी, अन्यों के उभयलोक हितकारी कार्य करे २० । लब्धलक्ष, जो कुछ सीखे, श्रवण करे, तिसके परमार्थ को तत्काल समझे२१ ॥

तथा षट्कर्म नित्य करे । वह यह है :—देव पूजा १ । गुरु उपास्ति२ । स्वाध्याय३ । संयम४ । तप५ । और दान६ । तथा षडावश्यक करे, तिनके नाम । सामायिक१ । चतुर्विंशतिस्तव२ । वंदनक३ । प्रतिक्रमण४ । कायोत्सर्ग५ । और प्रत्याख्यान ६ । तथा बारह व्रत धारण करे, तिन का स्वरूप नीचे लिखते हैं ॥

संकल्प करके निरपराधी त्रस जीव की हिंसा का त्याग । यह प्रथम स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत ॥१ ॥

द्विपद १, चतुष्पद२, अपद अर्थात् भूमि आदि स्थावर वस्तु संबंधी ३, इन की बाबत मृषा (झूठ) बोलने का त्याग । कोई पुरुष मातबर जानके अपनी धन आदि वस्तु रख जावे, जब वह मांगे, तब ऐसा नहीं कहना कि तूं मेरे पास अमुक वस्तु नहीं रख गया है । ऐसा झूठ नहीं बोले४, कूड़ीसाक्षी अर्थात् झूठी गवाही न देवे५ । यह पांच प्रकार का झूठ न बोले । यह दूसरा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत ॥२ ॥

सचित्त द्विपद चतुष्पदादि १; अचित्त सुवर्ण रुप्यादि २; मिश्र अलंकृत स्त्री आदि ३; तिस विषयक चोरी का त्याग । तथा कोई धन आदि स्थापन कर गया होवे अथवा किसी का दबा हुआ धन वा किसी का पड़ा हुआ धन; इनको ग्रहण न करे । यह तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रत ॥३ ॥

जो स्त्री पर विवाहिता अथवा संगृहीता होवे तिर्यंचणी, और देवी, तथा वेश्या; इनके साथ मैथुन सेवने का त्याग करे; और स्वदारा संतोष अंगीकार करे। यह चौथा स्वदारासंतोष परस्त्री विरमण व्रत ॥४ ॥

परिग्रह धन धान्यादि नव प्रकार का, तिस का स्व इच्छा प्रमाण से अधिक रखने का त्याग करे। यह पांचमा परिग्रहपरिमाण व्रत ॥५ ॥

षट्ही दिशा में धर्म कार्य वर्जके शेष अपने व्यापारादि वास्ते अमुक अमुक दिशा में इतने इतने योजन उपरांत नहीं जाना, ऐसा नियम अंगीकार करना। यह छट्ठा दिशा परिमाण व्रत ६ मांस, मदिरा, रात्रि भोजनादि बाईस २२ अभक्ष्य भक्षण का त्याग करे, और पंदरह प्रकार के वाणिज्य का त्याग करे, वा परिमाण करे। पंदरह वाणिज्य के नाम:—अंगारकर्म १, वनकर्म २, शकटकर्म ३, भाटककर्म ४, स्फोटक कर्म ५, दंतवाणिज्य ६, लाक्षावाणिज्य ७, रस वाणिज्य ८, केशवाणिज्य ९, विषवाणिज्य १०, यंत्रपीडा ११, निर्लांछनकर्म १२, दवदान १३, सरोवरद्रहादिशोष १४, और असतीपोष १५ इनका विस्तार जैनमत के शास्त्रों से जानना यह सप्तम भोगोपभोग व्रत ॥७ ॥

अपध्यान करना १, पापोपदेश करना २, हिंसाकारक वस्तु देनी ३, और प्रमादाचरण ४, यह चार प्रकार का अनर्थ दंड त्याग करे, यह अष्टम अनर्थदंड विरमण व्रत ॥८ ॥

सर्व संसार के धंधे छोड़ के जघन्य से जघन्य दो घड़ी तक सावद्य योग का त्याग करके धर्मध्यान में प्रवृत्त होवे। यह नवमा सामायिक व्रत ॥९ ॥

पूर्वोक्त सर्व व्रतों का जो संक्षेप करना, सो दशमा दिशावकाशिक व्रत ॥१० ॥

चारों आहार का अथवा पाणी वर्जके तीनों आहार का त्याग करके आठ पहर पर्यंत पौषध की क्रिया करे और धर्मध्यान ध्यावे। यह ग्यारहवां पौषधोपवास व्रत ॥११ ॥

न्यायोपार्जित धन से जो अन्न अपने खाने वास्ते त्यार हुआ होवे, तिसमें से निर्दोष भिक्षा साधु को देवे। और अंधे, लूले, लंगड़े, आदि जो मांगने को आवें, तिनको अपनी शक्ति के अनुसार अनुकंपादान देवे। यह अतिथि संविभाग नामा बारहवां व्रत १२ ॥ इन बारह व्रतों का स्वरूप विस्तार सहित श्राद्धप्रज्ञप्ति, आवश्यक सूत्रादि शास्त्रों में है।

गृहस्थ धर्मी श्रावक के अहो रात्रि के जो कृत्य हैं, सो अब संक्षेप से लिखते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि का आठमा विभाग अर्थात् चार घड़ी जब शेष रात्रि रहे, तब निद्रा छोड़े और मन में सात आठ वार पंचपरमेष्ठी नमस्कार को स्मरण करे। पीछे मैं कौन हूं, मेरी क्या अवस्था है मेरा क्या कुल है, मेरे में मूलगुण कौन कौन से कितने और कैसे हैं, उत्तरगुण कौन कौन से हैं, किस वस्तु का मेरे नियम अभिग्रह विशेष है, तथा मेरे पास धन के होने से जिन भवन १, जिनबिंब २, तिसकी प्रतिष्ठा ३, पुस्तक लेखन ४, चतुर्विधसंघभक्ति ८, शत्रुंजयादि तीर्थयात्रा ९, इन नव क्षेत्रों में से मैंने किस क्षेत्र को स्पर्शा है, किसको नहीं स्पर्शा, जो क्षेत्र नहीं स्पर्शन किया अर्थात् आराधन नहीं किया, तिसको आराधन करूं, और दशवैकालिकादि जो शास्त्र गुरु मुख से नहीं श्रवण किया, तिसके श्रवण करने में प्रयत्न करूं; तथा श्रावक सर्वदा संसारादि विरक्त हुआ दीक्षा लेने का ध्यान कदापि नही छोड़ता है, तो भी तिस अवसर में दीक्षा लेने का मनोर्थ करे ऐसे निशा शेष में जाग के चिंतवन, करे ॥

श्रावक जघन्य से जघन्य सूर्योदय से दो घड़ी पर्यंत नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे। तिस पीछे जब सूर्य का अर्द्ध बिंब दीखे, तब निर्मल मनोहर वस्त्र पहिर के घर देहरा में जिनराज की पूजा करे, पीछे महोत्सवपूर्वक बड़े मंदिर में जाकर पूजा करे। पूजा की विधि जैनशास्त्रों से जानना, देवपूजा करके पीछे नगर में गुरु होवें, तो तिन को विनयपूर्वक वंदना करे। पीछे गुरु से व्याख्यान सुने। पीछे बाल, वृद्ध, रोगी आदि साधुओं के खान, पान, औषध, पथ्यादि देने में यत्न करे। पीछे न्याय और नीति पूर्वक व्यापार करके धन उपार्जन करे। तिस धन से जो शुद्ध भोजन बना होवे, तिसके नैवेद्य से जिनराज की मध्यान्ह संबंधी पूजा करे। पीछे मुनि आवें, तो तिनको दान देवे। पीछे वृद्ध, रोगी, अतिथि, चौपायादिकी सार संभार अन्न, औषध, पथ्य, चारा पाणी आदि की चिंता करके लौल्यता रहित योग्य भोजन करे, अर्थात् सूतक पातकादि लोकविरुद्ध, और संसक्त अनंतकायिकादि आगमविरुद्ध, मांस मदिरादि उभयलोक विरुद्ध भोजन न करे। तथा लौल्यतासे अपनी पाचनशक्ति से अधिक भोजन न करे। पीछे धर्मशास्त्र का परमार्थ चिंतन करे। अथवा योग्य वाणिज्य करके अपरान्ह दिन व्यतीत करके सूर्यास्त से पहिले फिर जिनपूजा करे। तथा दिन में दो बार भोजन करना होवे, तो चारघड़ी दिन शेष रहे भोजन कर लेवे।।

त्रिकाल पूजा की विधि ऐसे है। सवेरे वास सुगंधी चंदनादि द्रव्यों से पूजा करे, मध्यान्ह में फूल नैवेद्यादिसे करे, और संध्या को धूप दीप, आरात्रिकादिसे पूजा करे इति दिन कृत्य कथन ॥

अब रात्रिकृत्य किंचिन्मात्र लिखते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षडावश्यक करे, और योग्य काल में निद्रालेवे प्राय: अब्रह्मचर्य का वर्जक होवे। सोता हुआ पंचपरमेष्ठी नमस्कार स्मरण करके सोवे। सर्वथा ब्रह्मचर्य पालने समर्थ न होवे, तो ऋतु काल में संतानार्थ, अथवा वेद विकार शमनार्थ निज स्त्री से औदासीन्यता से विकार शमन करे; पर अत्यंत विषय में रक्त होकर भोग विलास न करे। यह संक्षेप से गृहस्थ श्रावक धर्मी का रात्रिकृत्य जानना। यह सर्व संक्षेप से गृहस्थ धर्म का वर्णन है ॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org